International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 21-09-2025, Accepted: 20-10-2025, Published: 05-11-2025
Volume 11, Issue 4, 2025, Page No. 64-67

तुलसीराम की आत्मकथा में अभिव्यक्त भूमण्डलीकरण की अवधारणा

शिवम यादव
शोधार्थी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
यह शोध–आलेख डॉ. तुलसीराम की आत्मकथा 'मणिकर्णिका' और 'मुर्दहिया' में वैश्विक चेतना तथा लेखक की वैचारिकी के सक्रिय निर्माण का विश्लेषण करता है। आत्मकथा दर्शाती है कि भूमंडलीकरण के औपचारिक आगमन से पूर्व ही, भारत विश्व से जुड़ा था, जिसके प्रमाण स्वरूप रूस से 'सामूहिक खेती' जैसे विचारों का उल्लेख मिलता है, जो देश की वैश्विक भूमिका को पुष्ट करता है। लेखक की चेतना को आकार देने में बुद्ध, मार्क्स और अंबेडकर के विचारों का गहरा प्रभाव रहा है। मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष ने उन्हें सर्वाधिक प्रेरित किया, जिससे उन्होंने इन सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया। यह खोज लेखक की सामाजिक–राजनीतिक चेतना के लिए निर्णायक सिद्ध हुई। यह शोध–आलेख स्थापित करता है कि आत्मकथा वैश्विक संदर्भों और सामाजिक मुक्ति के दर्शन के बीच वैचारिक संश्लेषण का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

मूल शब्दः भूमण्डलीकरण, अर्थव्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय, समोही खेती, वैश्वीकरण, उपनिवेशवाद, मार्क्सवाद, अंबेडकरवाद, वर्ग, जाति

भूमण्डलीकरण अंग्रेजी के 'ग्लोबलाइजेशन' शब्द का हिन्दी पर्याय है। भूमण्डलीकरण का शाब्दिक अर्थ स्थानीय या क्षेत्रीय वस्तुओं या घटनाओं के विश्व स्तर पर रूपांतरण की प्रक्रिया है। जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक देश बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। भूमण्डलीकरण का प्रयोग अक्सर आर्थिक भूमण्डलीकरण के संदर्भ में किया जाता है अर्थात व्यापार, विदेशी प्रत्यक्ष निवेश, पूँजी प्रवाह, प्रवास प्रद्यौगिकी के प्रसार के माध्यम से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में एकीकरण। टाम जी पामर भूमण्डलीकरण को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि, सीमाओं के पार विनिमय पर राज्य प्रतिबंधों का ह्रास या विलोपन और इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुआ उत्पादन और विनिमय का तीव्र एकीकृत और जटिल विश्वस्तरीय तंत्र भूमंडलीकृत विश्व की पहचान है। नोअम चाम्सकी सैद्धांतिक रूप से भूमण्लीकरण शब्द का उपयोग आर्थिक भूमण्डलीकरण के नवउदार रूप का वर्णन करने में करते हैं।

दीपक नैय्यर ने गवर्निंग ग्लोबलाइजेशन: इश्युज एवं इंस्टीट्यूशन में भूमण्डलीकरण के आर्थिक आधार को महत्व देते हुए उसके सम्बन्ध राष्ट्रीय राज्यों के सीमा पार बढ़ती हुई आर्थिक गतिविधियों तथा आर्थिक लेन–देन से होने की बात की है। उनके अनुसार," भूमण्डलीकरण को एक ऐसी आर्थिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध विश्व अर्थव्यवस्था में राज्यों के बीच बढ़ते हुए आर्थिक खुलेपन, बढ़ती हुई आर्थिक अंतरनिर्भरता तथा गहरी हुई आर्थिक एकीकरण से है। "[1]

भारतीय इतिहास की दृष्टि से देखा जाय तो, भारत अगस्त 1947 को आजादी मिलने के बाद एक आधुनिक राष्ट्र के साकार होने की शुरुआत की। जिसके केन्द्र में एक लोकतांत्रिक राजनीति विद्यमान थी। इस घटना के 44 साल बाद भारत में एक नई आर्थिक नीति अपनाई गयी। जिसके मध्य में भूमण्लीकरण जैसी अवधारण भी समाहित थी। जिसे वैश्वीकरण की भी संज्ञा से नवाज गया।

ऐसे में तुलसीराम की आत्मकथा के दोनों खंडों का यदि अवलोकन किया जाय तो हमें यह दिखाई पड़ता है कि आत्मकथा के दोनों खण्ड सन 1975–1976 तक की ही घटना का वर्णन करते हैं। तथा भारत में भूमण्लीकरण की शुरुआत 1990 के बाद मानी जाती है। किन्तु कुछ ऐसी घटनाएं उनके साथ घटित हुई थी, जो एक विस्तृत फलक पर प्रभाव डाल रहीं थी। चाहे लेखक के बचपन की कोई घटना रही हो, या फिर बाद का उनका कोई वैचारिक आधार।

लेखक अपनी आत्मकथा के पहले खण्ड में अपने बचपन की एक घटना को साझा करते हैं। जिसमें लेखक के चाचा मुन्नर जो पड़ोस के गाँव के मुरली सिंह द्वारा कुछ राजनीतिक घटनाओं का जिक्र सुनकर लेखक को भी उसके बारे में बताते थे। ऐसे में एक घटना के सम्बन्ध में मुन्नर चाचा, लेखक से कहते हैं कि, " जवाहरलाल नेहरू रूस से सीख कर आयें है कि, अब भारत में 'समोही खेती' होई, अउर सब कमाई सब खाई, 'नेहरू जी करखन्ना खोलिहं आ पांचि साल में एक बेर योजना बनई हैं । पहिले हकबत होई फिर चकबट'। "[2] लेखक की उम्र उस समय छोटी होने के कारण इस तरह की बातें समझना मुश्किल था। किन्तु जब लेखक हाई स्कूल में पहुँचते हैं, तब उन्हें इस 'समोही खेती' का रहस्य सामूहिक खेती के रूप में समझ में आया। यह योजना कैसे रूस की देन थी इसे भी लेखक समझने का प्रयास करते हैं। सब कमाएं, सब खाएं जैसी योजना के तहत उस समय उठाया गया यह एक महत्वपूर्ण कदम था। जो बाद में वैश्वीकरण जैसी अवधारणा के केन्द्र में भी रहा। ये अलग बात है कि भूमण्लीकरण के नाम पर गलत आर्थिक नीतियों के चलते आम आदमी का जीना मोहाल हो चुका है। उपभोक्ता केंद्रित बाजार ने लोकतंत्र को लूटतंत्र में बदल दिया है। तमाम आर्थिक संसाधनों पर मुफ्तखोर तथा मुनाफाखोर जैसे लोगों ने अपना अधिकार जमा लिया है।

लेखक एक अन्य घटना का उल्लेख करते हुए यह कहते हैं कि भारतीय दलित समाज खासकर पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाको में निवास करने वाले दलितों द्वारा मरे हुए पशुओं के माँस को निकाल कर उसे खाने में प्रयोग करते थे। इन पशुओं के माँस को 'डांगर' कहा जाता था। जो माँस बच जाता था, उसे तेज धूप में सुखाकर रख लिया जाता था। ताकि जब खाने की वस्तु न रहे तो इससे काम चला लिया जाय। डांगर को न खाया जाय इसके लिए बड़े जोर शोर से आवाज उठाई गयी। इस संबंध में लेखक लिखते हैं कि," आजादी के बाद चमारों ने डांगर खाना बंद करने का अभियान चलाया, जो अत्यन्त सफल रहा। स्मरण रहे कि यह अभियान मूल रूप से बाबा साहेब अम्बेडकर ने चलाया था, किन्तु हमारे बारहगांवा में उन्हें कोई नही जानता था। "[3] डांगर न खाने की मुहिम को बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर

ने एक विस्तृत फलक पर रखा था। जो अपने आप में दलितों के सम्मान के लिए एक व्यापक आंदोलन था। जो सफल भी रहा। ये अलग बात है कि, उस समय की दलित जनता अशिक्षित होने के कारण इस आंदोलन के पीछे के मुख्य नेता से अपरिचित रह गई।

लेखक पूर्वी उत्तर प्रदेश से विस्थापित उन मजदूरों का भी वर्णन व्यापक स्तर पर करते हैं जो रोजगार की तलाश में कलकत्ता जैसे शहरों की तरफ पलायन किये थे। चुँकि कलकत्ता उस समय भारत में आर्थिक गतिविधियों के मुख्य केन्द्र में था। क्योंकि यूरोपीय उपनिवेशवाद का बड़ा व्यापक प्रभाव कलकत्ता पर पड़ा था। जिसके चलते तमाम तरह की फैक्ट्रियाँ यहाँ स्थापित की गयी थी। कलकत्ता शहर के आसनसोल जैसी जगहों पर नीघा कोइलरी, बिजली के कारखाने तथा लोहे इत्यादि की फैक्ट्रियाँ व्यापक स्तर पर विद्यमान थी। जिसके चलते पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के हजारो मजदूर एक अच्छी आमदनी की उम्मीद लिए इन इलाकों की तरफ विस्थापित होते रहे। लेखक जब छोटे थे तो उस समय उनके मुन्नर चाचा आसनसोल की कोइलरी में ही मजदूरी करते थे। बाद में लेखक के घर के सदस्य चुरई भईया तथा सोबरन जैसे लोग भी इन फैक्ट्रियों मे काम करने के लिए आये। लेखक के घर की ही तरह तमाम ऐसे मजदूर जो एक बेहतर भविष्य तथा अच्छी आमदनी की उम्मीद लिए ऐसी जगहों पर पलायन करते रहे। अच्छी आमदनी की उम्मीद के चलते इन मजदूरों को न जाने कितने शोषण तथा भेदभाव का सामना करना पड़ता था। जिसे रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं कि," वैसे कोयला खदानों के मजदूरों का जीवन बड़ा ही शोषणयुक्त हुआ करता था। बिचौलिया ठेकेदारी का बोलबाला था। वहाँ अधिकतर मजदूर दलित या अति पिछड़ी जातियों के होते थे, किन्तु ठेकेदार सवर्ण होते थे।[6] मजदूरों को साप्ताहिक मिलने वाली तनख्वाह भी वे ही (सवर्ण ठेकेदार) लाकर बांटते थे।कोई भी मजदूर सोलह सत्रह रुपये से ज्यादा हर सप्ताह नहीं पाता था। तनख्वाह देते समय ठेकेदार हर मजदूर की कमाई में से हर सप्ताह दो–दो रुपये पहले अपने पास रख लेता था। इस तरह सैकड़ों रुपये हर सप्ताह ठेकेदार को बिना किसी मेहनत के मिल जात थे "[4] इस बात से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि कलकत्ता जैसा नगर जो उस समय भारत का एक विस्तृत आर्थिक मंच था, जहाँ से वैश्विक स्तर पर आयात–निर्यात सहजता पूर्वक होता था। इतने बड़े आर्थिक मंच पर भी पिछड़े और दलित मजदूरों का शोषण कितनी सहजता से होता था कि जो उनकी कमाई के पैसे थे उसमे से भी बिचौलिए ठेकेदार अपना कमीशन पहले ही निकाल लेते थे। जिसके चलते मजदूरों के हाथ में उनकी वास्तविक कमाई का हक कभी न प्राप्त होता था।

लेखक कलकत्ता शहर के हुगली नदी के पास स्थित 'खिदिरपुर डक' के ऐतिहासिक महत्व को बखूबी ढंग से प्रस्तुत करते हैं। वे यह बताते हैं कि कैसे उत्तर प्रदेश और बिहार जैसी जगहों के मजदूरों को पानी के जहाजों के माध्यम से खिदिरपुर डक के माध्यम से ही दूसरे अनजान देशों को भेज दिया जाता था। वे लिखते हैं कि," हुगली के उस पार बना 'खिदिरपुर डक' अविस्मरणीय छवि प्रस्तुत करता था वहाँ दर्जनों पानी के जहाज लंगर लगाए खड़े रहते थे। कई जहाज बहुमंजिली इमारत की तरह पानी में तैर रहे थे। उन्हें देखकर वह इतिहास आज भी ताजा हो उठता है, जिसके तहत यू. पी. बिहार के हजारों मजदूर खिदिरपुर डक से मारीशस, सूरीनाम, ट्रीनीटाड जैसे अनेक अजनबी देशों की अनजान मंजिल की तरफ भेज दिये जाते थे। ऐसी मजबूर यात्राओं का सिलसिला 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में शुरू हुआ था। खिदिरपुर डक को देखकर कलकत्ता के एक वास्तविक व्यापारिक नगर होने की छवि साफ नजर आने लगती थी। "[5] इससे यह सहज ही समझा जा सकता है कि, एक व्यापक स्तर पर यू. पी. बिहार जैसी जगहों से मजदूरों को कैसे एक अनजान देश में भेज दिया जाता था। यह सत्य है कि वैश्विक धरातल पर यह आवाजाही भूमण्डलीकरण के नजरिये से सामान्य दिख सकती है, किन्तु ऐसी जगहों पर ले जाए गए मजदूर सिर्फ मजदूर बन कर ही रह जाते थे, वहाँ भी उनके साथ भेदभाव और शोषण ही होता था। इससे यह साबित होता है कि विश्व स्तर के आर्थिक मंच पर तब भी कुछ चन्द पूँजीपतियों का अधिकार था, आज भी स्थिति इससे कुछ भिन्न नहीं।

तुलसीराम अपनी वैचारिकी के प्रमुख आधारों में बौद्ध दर्शन, मार्क्सवाद तथा अंबेडकरवाद को मुख्य रूप से माना है। बौद्ध दर्शन तथा मार्क्सवाद का सर्वाधिक प्रभाव लेखक पर राहुल सांकृत्यायन के साहित्यिक विचारों को पढ़ने से पड़ा। राहुल जी तथा उनके साहित्य से लेखक का परिचय शुरुआत में बहुत थोड़ा ही हो सका था। लेखक सर्वप्रथम नवीं कक्षा में अपने एक अंग्रेजी पाठ के जरिये गौतम बुद्ध के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं से परिचित हो सके थे। जिसमें बुद्ध के गृहत्याग की भी कथा शामिल थी। यह घटना लेखक के जीवन में दूरगामी सिद्ध होती है। और जब लेखक घर से भागते हैं तो उनके मस्तिष्क में बुद्ध के गृहत्याग की घटना साथ–साथ चलती रही। लेखक जब बाद की उच्च कक्षाओं में बौद्ध धर्म का गहन अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि एक ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि जहाँ अंधविश्वास, बाह्यडम्बर तथा ईश्वर के प्रति एक आस्था विद्यमान थी, वह सब कैसे एक झटके में नास्तिकता बदल जाती है। साथ ही लेखक के लिए अंधविश्वास तथा बाह्यडम्बर के सारे रास्ते बन्द हो जाते हैं। लेखक अपने उच्च कक्षा के अध्ययन के दौरान लिखते हैं कि, " उस दौरान मैं राहुल की एक अन्य पुस्तक 'बौद्धधर्म' तथा प्रथम सदी के महान बौद्ध कवि अश्वघोष की कालजयी रचना 'बुद्धचरित' को बार–बार पढ़ता, विशेष रूप से बुद्ध के प्रथम उपदेश को मैं रट सा गया। उनके अनात्मवाद को हर क्षण दोहराता। अंततोगत्वा राहुल के साथ–साथ बुद्ध ने मेरी नास्तिकता पर अमिट ठप्पा लगा दिया। मेरे मस्तिष्क तथा हृदय के सारे दरवाजे ईश्वर तथा अंधविश्वासों के लिए हमेशा के लिए बन्द हो गए। मैं पूर्णरूपेण नास्तिक हो गया। नास्तिकता ने मुझे हद से ज्यादा मानवीय बना दिया। मैं विशुद्ध रूप से मानवता का पुजारी बन गया। जो लोग मानवता की बात करते हुए ईश्वरीय अंधविश्वासों की वकालत करते हैं, मैं उन्हें सबसे बड़ा पाखण्डी और ढोंगी समझने लगा। "[6] इससे हम सहज ही समझ सकते हैं कि कैसे लेखक द्वारा बौद्ध दर्शन के अध्ययन के चलते उनकी वैचारिकी में बदलाव आये। जिसके चलते वे मानवता के प्रमुख लक्ष्यों से जुड़ सके।

लेखक के कम्युनिस्ट बनने की प्रक्रिया के पीछे राहुल जी का विशेष योगदान रहा था। मार्क्सवाद एक ऐसी विचारधारा रही, जिसनें वैश्विक स्तर पर लोगों को प्रभावित किया। लेखक स्वयं अपने छात्र जीवन में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित रहे। लेखक राहुल जी की पुस्तक 'भागो नहीं (दुनिया को) बदलो' का वर्णन करते हुए यह दर्शाते हैं कि कैसे मैं एक कम्युनिस्ट बनने की प्रक्रिया में अग्रसर रहा। वे इसी पुस्तक के हवाले से लिखते हैं कि," पहला अध्याय दुनिया नरक है से शुरू होता है, जिसमें वे भूखे नंगे रहने वालों का जिक्र करते हैं और कहते हैं कि अन्न न मिलने से शरीर दुर्बल तथा दुर्बलता से बीमारी फैलती है। वे आगे कहते हैं: दुबलों दैव घातकः, यानी कोई भी आसपास से बीमारी जा रही हो, दुर्बल आदमी को देखते ही उसका मन ललचा जाता है। इस तरह से वे मस्तिष्क को छूजाने वाली बातों में अपनी वार्ता जारी रखते हुए सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से लेकर अंतरराष्ट्रीय राजनीति पर गहन बहस करते हैं। उत्पादन के साधनों के विकास के क्रम में वे मार्क्स के पूरे ऐतिहासिक भौतिकवाद यानी आदिम युग से उठकर दास युग, सामंत युग तथा पूंजीवाद से होते हुए सामजवादी युग में प्रवेश करते हैं।

पूंजीवाद तथा पूंजीपति को वे 'जोंक पुरान' के रूप में चित्रित करते हैं।[6] वे खून चूसने वाले जोंकों के दुश्मन के रूप में मरकस बाबा यानी कार्ल मार्क्स के दर्शन पर बहस करते हुए लेनिन तथा रूसी क्रांति के बारे में विस्तार से बताते हैं।[6] वे हिटलर की नीतियों को 'पागल सियार गाँव की ओर' जैसा बताते हैं। वे चीन विश्वशांति, भारत की आजादी, पंडा, मुल्ला, सेठ, महिला, अछूत, शोषित, भाषा, ज्ञान आदि सब पर प्रकाश डालते हुए कमेरों के राज्य में साम्यवादी व्यवस्था का मनमोहक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। "[7] इस उद्धरण से हम यह समझ सकते हैं कि लेखक को इस पुस्तक ने इस हद तक प्रभावित किया कि स्वयं लेखक एक कम्युनिस्ट बन जाते हैं। जिसके चलते लेखक की वैचारिकी में बहुत बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है।

राहुल जी की एक अन्य पुस्तक 'तुम्हारी क्षय' ने भी लेखक को बहुत प्रभावित किया। इस पुस्तक के माध्यम से राहुल जी यह दर्शाते हैं कि विश्व भर में प्रगतिशील परिवर्तनों को रोकने में सबसे प्रमुख कारण जाति, धर्म, ईश्वर की महत्ता तथा अज्ञानता को प्रमुख मानते हैं। इसी पुस्तक के हवाले से लेखक लिखते हैं कि," धर्म के बारे में राहुल जी का कहना था कि यदि माँ बाप अपने बच्चे को धर्म के बारे में बचपन से ही तरह–तरह की पौराणिक गाथाएं नहीं सुनाएं तो बच्चे को शायद पता ही नहीं चल पाए कि यह भी कोई वस्तु है। उन्होंने धर्म को भारतीय समाज का सबसे बड़ा शोषक माना है।[6] उनका यह भी मानना था कि भगवान एक काल्पनिक वस्तु के अलावा कुछ भी नहीं है। अज्ञान का ही दूसरा नाम ईश्वर है।[6] पुनर्जन्म के बारे में उनका तर्क था कि यदि पुनर्जन्म होता तो एक के मरने पर एक ही पैदा होता या उससे भी कम, क्योंकि ही हिन्दू माइथालोजी के अनुसार कुछ लोगों को मोक्ष मिल जाता है, अर्थात मोक्ष मिल जाने पर जन्म नहीं होता है। किंतु देखा जाता है कि एक मरता है तो दस पैदा हो रहे हैं और आबादी की बढ़ोत्तरी इस समय विश्व की एक बड़ी समस्या बन गयी है। आखिर इतने लोग कहाँ से पैदा हो जाते हैं। 'पुनर्जन्म नहीं होता है', के बारे में यह एक अकाट्य तर्क है। "[8] यह एक ऐसी पुस्तक रही है जिसमें राहुल जी भारत ही नही वरन विश्व स्तर पर व्याप्त उन सामाजिक समस्याओं को रेखांकित करते हैं जिसके चलते कुछ तथाकथित सामंतवादी लोग समाज की नीतियों के निर्धारक बने बैठें हैं। और वही लोग समाज को मॉनीटर करते हैं। लेखक को इस पुस्तक के अध्ययन के बाद उनके सोचते समझने के नजरिये में एक गहरा परिवर्तन दिखाई पड़ा।

बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर तथा मार्क्स के विचारों से लेखक इतना प्रभावित रहे कि नास्तिकता तथा कम्युनिज्म उनके चिंतन का आधार ही बन गया। इस संदर्भ में लेखक लिखते हैं कि," मुझे डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर की यह युक्ति हमेशा याद रहती है: जो लोग चिटियों को शक्कर खिलाते हैं, किंतु आदमी को प्यासा रखते हैं, वे पाखण्डी हैं। नास्तिकता तथा कम्युनिज्म को मैंने मानव मस्तिष्क के चिंतन की सर्वोच्च पराकाष्ठा के रूप में अपनाया।[6] कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा था कि ईश्वर हृदयहीन व्यक्तियों का हृदय होता है। "[9] इन्हीं विचारों के प्रभाव के चलते लेखक ईश्वर को भयरूपी आधारभूत कल्पना मानने लगे। तथा ईश्वर रूपी सत्ता को एक सिरे से खारिज कर देते हैं। आंबेडकर तथा मार्क्स ऐसे चिंतक रहे, जिनके विचारों ने संसार भर में लोगों को प्रभावित किया।

सम्पूर्ण विश्व को अपने विचारों से प्रभावित करने वाले विचारक कार्ल मार्क्स के विचारों से लेखक इतना प्रभावित रहे कि मार्क्सवाद से संम्बन्धित प्रमुख पुस्तकों का अध्ययन वे खोज–खोज कर करने लगे। साथ ही उनके समय में हो रही राजनीति हलचलों में लेखक की रुचि अनायास ही बढ़ती गई। लेखक छात्र राजनीति के दौरान ही सी. पी. आई. जैसी कम्युनिष्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य भी रहे। मार्क्सवादी विचारधारा लेखक पर इतना हावी रही कि, जब वे पहली बार ताजमहल को देखते हैं तो प्रथम दृष्टया वे उसके गुणगान में संलग्न हो जाते हैं। किंतु जब वे ताज के अंदर प्रवेश करते हैं तो उनको प्यार की निशानी मजदूरों की निशानी में तब्दील होती दिखी। जिसके पीछे उनकी मार्क्सवादी सोच ही हावी रही। और वे चार पंक्तियाँ इस प्रकार लिखते हैं–

" जिनकी हड्डी पसली से हैं
बनी ताज की दीवारें
रखते ही पग झनझन करती
आहें उनकी चीत्कारें। "[10]

लेखक के वैचारिक द्वन्द्व की एक लम्बी श्रृंखला रही है। भारत में नक्सलबाड़ी आंदोलन के चलते लेखक माओत्से तुंग के विचारों से अत्यंत प्रभावित रहे। माओ की पुस्तक 'रेड बुक' जो एक क्रांति के लिए हमेशा प्रेरित करती रही, लेखक को अत्यन्त पसन्द आई। 'रेड बुक' एक ऐसी पुस्तक रही है जिसने विश्व स्तर पर लोगों को सोचने पर मजबूर किया था। इस पुस्तक में उल्लिखित एक वाक्य : 'पोलिटिकल पावर ग्रोज आन द बैरल आफ गन', यानी' राजनीतिक सत्ता बंदूक की नली से पैदा होती है' ने लेखक को बहुत प्रभावित किया। इसी के चलते लेखक अपने दो मित्रों के साथ एक गाँव के मशहूर गुंडे को मारने के लिए चले जाते हैं। क्योंकि गुंडे का भतीजा नक्सलबादियों का समर्थक था। ये अलग बात रही कि अंततः उसे नहीं मारा जाता। किंतु लेखक नक्सलबाड़ी समर्थक होने के साथ–साथ माओ की ओजस्वी क्रांति जैसी विचारधारा से बहुत प्रभावित रहे।

वर्ग तथा जाति की राजनीति को जब लेखक भारत के सामाजिक परिप्रेक्ष्य से देखते हैं तो उन्हें बड़ी निरासा प्राप्त हुई। ऐसे में मार्क्स जिन मजदूरों की बात कर रहे होते हैं लेखक वहाँ प्रश्न चिन्ह् लगा देते हैं। तुलसीराम लिखते हैं कि, "धीरे–धीरे क्लास (वर्ग) तथा कास्ट (जाति) की अवधारणा समस्याजनक होकर मेरे सामने आने लगी। व्यवहारिक रूप में मुझे यह अनुभव होने लगा कि मार्क्स जिन मजदूर वर्ग की बात करते थे, उसका अधिसंख्य हिस्सा भारत में सामाजिक भेदभाव का शिकार दलित समाज से आता था। शायद कम्युनिस्ट पार्टी का ध्यान इस प्रश्न पर नहीं जाता था। मुझे आज भी आश्चर्य होता है कि भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के लगभग नब्बे साल पूरे होने जा रहे हैं, किंतु कम्युनिस्ट पार्टी ने कभी भी कोई राष्ट्रीय स्तर पर जाति व्यवस्था विरोधी आंदोलन नहीं चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि समय के बीतने के साथ ही दलितों के बीच कम्युनिस्ट पार्टी का आधार लगभग समाप्त हो गया। इन तमाम नकारात्मक परिस्थितियों का प्रभाव यह पड़ा कि दलित भी सवर्णों की तरह जातिवादी राजनीति में व्यस्त हो गए। "[11] इससे हम समझ सकते हैं कि आज भारत में जातिवाद कितना शक्तिशाली है। मार्क्सवाद सैध्दांतिक रूप से तो बहुत अच्छा दिखता है किंतु भारतीय परिप्रेक्ष्य में उसे धरातल पर लागू करना कल्पना जैसा ही है।

निष्कर्ष

अतः हम देख सकते हैं कि, भूमण्डलीकरण करण और वैश्वीकरण जैसी अवधारणाएँ जो बहुत बाद में भारत में प्रचलित हुई, लेखक की आत्मकथा में उसका पक्ष पहले से ही मौजूद रहा है। बचपन से ही जाने–अनजाने लेखक अपने चाचा द्वारा देश–दुनिया की खबरों से रूबरू होता रहा है। कैसे रूस जैसे देशों द्वारा भारत में 'सामूहिक खेती' का विचार आता है। वैश्विक–स्तर पर हो रहे लेन–देन का यह विवरण लेखक की आत्मकथा का एक मजबूत पक्ष रहा है। इससे इस बात की पुष्टि अवश्य हो जाती है कि, उस दौर में भारत का वैश्विक व्यापार मे अपनी भूमिका को दर्ज करा चुका था। लेखक की आत्मकथा के दोनों खण्डों में, बुद्ध

,मार्क्स और अंबेडकर के विचारों का विवरण प्रमुख रूप से हुआ है, जिससे लेखक बहुत प्रभावित भी रहे हैं। मार्क्सवाद के वर्ग संघर्ष ने लेखक को बहुत प्रभावित किया। मार्क्सवाद से लेखन का जुड़ाव ऐसा रहा कि, उन्होंने उनके सिद्धांतों की पुस्तको को खोज–खोज कर पढ़ना शुरू किया था। जो उनकी वैचारिकी के निर्माण मे अहम भूमिका भी निभाई।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धांत, के. के. मिश्रा, सुभाष शुक्ला, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण– 2010, पृष्ठ 175
2. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम राजकमल प्रकाशन, संस्करण– 2023, पृ. 37
3. वही, पृ. 16
4. मणिकर्णिका, डॉ. तुलसीराम राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2023, पृ. 25
5. वही, पृ. 30
6. वही, पृ. 63
7. वही, पृ. 60–61
8. वही, पृ. 62
9. वही, पृ. 63
10. वही, पृ. 85
11. वही, पृ. 171